लोकतंत्र में शक्ति का पृथक्करण जरूरी है

संसदीय लोकतंत्र में शक्तियों का पृथक्करण किया जाता है। सरकार के विधायी, कार्यकारी और न्यायिक कार्यों का विभाजन करके नियंत्रण और संतुलन बनाने का प्रयास किया जाता है। हाल ही में इजरायल की नेतन्याहू सरकार ने न्यायपालिका पर कार्यपालिका का प्रभुत्व बनाने के लिए कोशिश शुरू कर दी है। अगर यह सफल हो जाता है, तो इससे विश्व के कई लोकतंत्र प्रभावित होंगे।

संविधान की सीमा सिद्धांतों तक ही है। संविधान के इस ढांचे का जनहित में उपयोग करके विधायिका कानून बनाती है। ये कानून संविधान के अनुसार बनाए गए हैं या नहीं, इसकी जांच न्यायपालिका करती है। यहाँ पर सरकार और न्यायपालिका के बीच कभी-कभी विरोधाभास दिखाई देता है। एक तरफ जन प्रतिनिधित्व होता है, और दूसरी तरफ संविधान विशेषज्ञ। इस स्थिति को टालने के लिए सन् 1951 में भारत में पहला संविधान संशोधन किया गया था। इसमें नौवीं अनुसूची को शामिल करके कुछ कानूनों को न्यायिक समीक्षा से परे कर दिया गया था।

मूल संरचना सिद्धांत का सुरक्षा कवच -

शक्तियों का पृथक्करण सिद्धांत, किसी लोकतंत्र का आवश्यक अंग है। इसके अभाव में शक्ति केंद्रित हो जाएगी। लोकतंत्र का स्वरूप कमजोर हो जाएगा। भारत में संविधान की बुनियादी संरचना पर डटे रहने का सिद्धांत, दो दशकों तक जद्दोजहद के माध्यम से विकसित हुआ है। इस बीच में पूर्ण बहुमत वाली सरकारों ने नियंत्रण और संतुलन की प्रणाली की सीमाओं का लगातार परीक्षण किया है। इस सिद्धांत को जन प्रतिनिधियों और न्यायिक समीक्षा के बीच टकराव के रूप में प्रस्तुत करना गलत है।

हाल ही के एक प्रकरण ने इसका उदाहरण भी दे दिया है। न्यायपालिका की नियुक्तियों और तबादलों पर न्यायपालिका के एकाधिकार को तोड़ने के लिए एक संवैधानिक संशोधन करके एनजेएसी (नेशनल ज्यूडिशियल अपांइटमेण्ट कमीशन) बनाने के लिए विधेयक लाया गया था। इसका पारित होना, न होना अलग मुद्दा है। लेकिन न्यायपालिका और विधायिका के बीच

इस प्रकार के छोटे-मोटे संघर्ष चलना अच्छा संकेत है। यह दिखाता है कि शक्ति केंद्रित नहीं है। इस प्रणाली का बने रहना ही सार्वजनिक हित में है।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित संपादकीय पर आधारित। 29 मार्च, 2023